नोट—श्री धर्म प्रकाश आनन्द की अनुपस्थिति और श्री 'अश्क' की अस्वस्थता के कारण पहले दो फर्मों में कुछ प्रूफ की अशुद्धियां रह गई हैं।

१. 'शीर्षक' में 'समझाता हूँ' के स्थान पर 'समझता हूँ' और कविताओं में 'आकांक्षा' के स्थान पर 'अकांक्षा' छप गया है।

२. 'परिचय' में दूसरे पृष्ठ पर सार्वजनीन के स्थान पर संवर्जनीन और सन् २८ के स्थान पर ३२ छप गया है।

३. 'आलोचना' में पृष्ठ १० पंक्ति ११ भी के स्थान पर की; पृष्ठ ७ पंक्ति ८, आलिंगन के स्थान पर अलिंगण, पंक्ति १४ किस के स्थान पर सिक, पंक्ति २० खिल के स्थान पर लिख; पृष्ठ ११, पंक्ति ४ व्यवस्थापक के स्थान पर व्यवस्थापिक, पंक्ति ६ ऋतु के स्थान पर ऋतु, पृष्ठ २० पंक्ति १४ प्रतिबिम्ब के स्थान पर प्रबिम्ब; पृष्ठ १६ पंक्ति १५ त्रुटि के स्थान पर त्रुटी छप गया है।

४. इस के अतिरिक्त, सांकेतिकता, जिज्ञासा, आलंकारिकता, पैरिस जहां भी गलत छपे हैं पाठक ठीक कर लें।

५. संक्षेप में के स्थान पर दो जगह संक्षिप्त में छपा है।

इन अशुद्धियों के लिए प्रकाशक श्री वर्मा, श्री आनन्द और पाठकों के आगे क्षमाप्रार्थी हैं।

[विनीत] इन्द्रजीत शर्मा
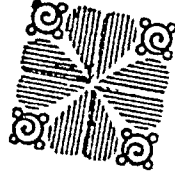
रचयिता—
उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

मुद्रक
ला० खुशहालचन्द खुर्सन्द
वीर मिलाप प्रेस, लाहौर।

मूल्य १।)

प्रकाशक
इन्द्रजीत शर्मा
व्यवस्थापक शर्मा ब्रादर्स
१०४ अनारकली, लाहौर।

शीर्षक

पतझड़

अन्तिम मेहमान

आकांक्षा

पतित

आशा का अंचल

स्वर्ग-गता शीला को

दिल ने कहा—दो फूल भी न लाए पागल प्रिय की समाधि पर चढ़ाने !

आँखे बोल उठीं—फूल ! हम हार पिरो देंगी !

परिचय

प्रात-प्रदीप 'अश्क' जी की उन रचनाओं का संग्रह है जिसमे जीवन की अन्यतम वेदनाओं को स्पर्श करने वाली भावनाओं की एक करुणापूर्ण झाँकी है। अनुभूत चित्रों मे जो रङ्ग भरा गया है उनमे जितनी कला है उतनी ही सजीवता। आधुनिक युग मे कविता की धारा जिस अस्पष्ट और कृत्रिम रूप को लेकर नवयुवक कवियों की रचनाओं मे जन्म पा रही है, उससे 'अश्क' जी की कविताएं एक नवीन जागृति और सत्य की ओर संकेत कर रही हैं। प्रथमतः उर्दू-लेखक होते हुए भी 'अश्क' ने जिस सरलता और सफलता से हिन्दी रचना मे योग दिया

है, वह उनकी प्रतिभा की स्पष्ट कसौटी है। 'अश्क' की रचनाओं मे आँसू की बूंदों मे भी वाणी आ गई है। वेदना मे स्पन्दन है और करुणा मे जीवन। ज्ञात होता है 'अश्क' की कविताओं मे उनका व्यक्तिगत जीवन झांक रहा है। यह जीवन इतना व्यापक हो गया है कि वह सर्वजनीन ही हो गया है। प्रात-प्रदीप ने अपने निर्वाण से पूर्व जीवन की समस्त जलन को कितनी करुणा से स्पष्ट किया है यह इन पृष्ठों मे मिलेगा। 'विदा' 'पतझड़', और 'प्रतीक्षा' शीर्षक रचनाओं मे हृदय की वेदना से समस्त संसार कवि के शब्द सुनने को मौन हो गया है।

प्रयाग विश्व-विद्यालय
२६ सितम्बर १६३२

रामकुमार वर्मा

आलोचना

(क) काव्य और उसका विवेचन

मै पैरस मे था, जब मुझे 'प्रात-प्रदीप' का मसौदा मिला। 'अश्क' का पत्र मुझे बहुत दिन पहले लन्दन ही में मिल गया था, पर तब चूंकि अचानक मुझे स्विट्जरलैंड के लिए चल देना पड़ा, इस लिए मसौदा मुझे तब तक नहीं मिला जब तक मैं वापस पैरस नहीं पहुँच गया। 'अश्क' के पत्र ने कविताओं के सम्बन्ध में मुझे कुछ उत्सुक बना दिया था। तीन वर्ष पहले—जब मै भारत ही मे था—जिस 'अश्क' को मैं जानता था, वह निस्सन्देह कहानीकार तो अच्छा था पर उस की कवित्व-शक्ति के सम्बन्ध मे मुझे कुछ सन्देह ही था। कविता वह तब की कभी कभी कर लिया करता था, पर अन्तर-प्रेरणा से लिखी हुई वह मुझे प्रतीत न होती थी और उस की सब से बड़ी खूबी उस की तुकबन्दी ही दिखाई देती थी। जीवन की अनुभूतियों तथा विचारोत्पादक सुन्दर भावनाओं की अभिव्यक्ति के स्थान पर वे मस्तिष्क के व्यायाम का अभ्यास मात्र ही मालूम होती थी, इस लिए जब मैंने पहली बार कविताओं को एक सरसरी निगाह से देखा तो मुझे विश्वास नहीं था कि मै उन्हे पसन्द भी कर सकूँगा, पर शीघ्र ही मेरा यह सन्देह दूर हो गया। अपने प्रवाह और विचारों की मौलिकता, दोनों के ख़याल से वे मन को अपनी ओर खींचती हुई प्रतीत हुईं। कुछ ऐसी चीज थी इन मे जो साधारण से भिन्न थी, जो

अनायास हृदय के अज्ञात तारों को झंकृत करती हुई मालूम होती थी—सच मुच 'अश्क' कवि बन गया था—और वह भी एक अच्छा कवि !

कवि कौन है ?

यह काया-पलट हुई कैसे ? कुछ ऐसे भी व्यक्ति-विशेष होते हैं जिन मे काव्य-सृजन की प्रतिभा जन्म-जात होती है। बचपन ही से वे सुन्दर कविता करने लगते है। वे कवि पोप (Alexander Pope)[*] के साथ कह सकते हैं।

I lisped in numbers because the numbers Came.

अर्थात 'इंशा' के शब्दों मे।

'बादल से बॅधे आते है मजमूं मेरे आगे'।

पर ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति विरले ही होते है और कुछ भी हो 'अश्क' उन मे से होने का दावा नही कर सकता। परन्तु कवियों की एक दूसरी श्रेणी भी है—जो कवि बन गए क्योंकि अचानक उन के जीवन मे कुछ ऐसे महत्व की घटना घटी कि उन के अन्तर की समस्त भावनाएं द्रवित होकर काव्य के रूप मे बह निकली। अपने उल्लास और अवसाद, दोनों मे हम कवि बन जाते है। अन्ततः कविता है ही क्या ?—सुन्दर भाषा मे हमारे आन्तरिक उद्गारों की अभिव्यक्ति मात्र ही तो—और

---

[*] १८ वी शताब्दी का इंग्लिस्तान का प्रसिद्ध कवि।

काव्य तो एक तरह से हम सब मे है। यदि ऐसा न होता तो हम कभी भी कवि की भावनाओं को समझने मे सफल न हो सकते। जो प्रतिभा-शाली व्यक्ति अपनी भावनाओं को ज्ञेय रूप दे कर, सुन्दर भाषा से विभूषित कर हमारे सामने रखने मे सफल होते हैं, वे कवि हैं, जो अनुभव तो करते हैं पर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति का जामा नही पहना सकते—वे साधारण मनुष्य है और जो न अनुभव कर सकते हैं और न अभिव्यक्त—वे पशु है। काव्य और दूसरी ललित-कलाएं उन के लिए नही है।

कवि की संवेदनशीलता और उसकी अभिव्यक्ति

इस तरह दो विशेषताएं हैं जो कवि को साधारण जनता से भिन्न करती है—वे हैं उस की संवेदनशीलता और उस संवेदनशीलता से जनित भावनाओं को सुन्दर भाषा मे अभिव्यक्त करने की उस की शक्ति। उच्च कोटि की कविता के लिये दूसरी विशेषता उतनी ही अनिवार्य्य है जितनी कि पहली। अस्पष्ट भाषा से व्यक्त एक सुन्दर भावना उतनी ही दुखद प्रतीत होती है जितना सुन्दर कलापूर्ण शब्दों मे वर्णित एक अस्पष्ट विचार।

मैने कब चाहा चिर मिलना,
कब चाहा चिर प्यार?
चाहा कब हो कुटिया मेरी,
तेरा कारागार?

और प्रेम का लघु सुन्दर सपना,
कब चाहा पाए चिर यौवन,
चाहा कब हो जाए बन्धन—
मेरे सीमा हीन प्रणय का
सखि अन्तिम अंजाम

भाव सुन्दर है और भाव को व्यक्त करने के लिए कवि ने भाषा भी स्पष्ट और सुन्दर प्रयुक्त की है।

वास्तव मे, चरम-सीमा को पहुँची हुई कवि की संवेदन-शीलता और हमारी अपेक्षाकृत अपूर्ण भावनाओं के मध्य जो खाड़ी है, कविता उस पर पुल बनाने वाली महाराब है। कवि हमे उस सुन्दर को दिखाता है, जिसे शायद हम बिना देखे गुजर जाते; मानव स्वभाव के उन मनोवेशों पर से कवि पर्दा उठा देता है जो हमारे स्वभाव का अङ्ग होते हुए भी हम पर नही खुलते; कवि हमे अपने आपको देखने वाली आंखे देता है। मनुष्य जन्म लेते है और मर जाते है; संस्थाएं बनती है और बिगड़ती हैं, जातियां उन्नत होती हैं और पतन की गहराइयों मे खो जाती हैं पर ये कला की महान कृतियां ही है, जिन्हे स्थायित्व और अनन्त यौवन प्राप्त है। कारण ? कवि की दृष्टि वाह्य को छेद कर अन्तर तक जा पहुँचती है। मनुष्य की भावनाओं के अथाह और अनन्त सागर मे वह गहरी डुबकी लगाता है और जैसा की प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि टैनिसन (Tennyson) ने कहा—'कवि

क्षणिक को हमारे सामने स्थिर कर हमें उस में बसने की सत्ता प्रदान करता है।

कवि की संवेदनशीलता अत्यन्त विकसित होती है उसके कहकहे साधारण लोगों से कही अधिक ऊँचे और उसका क्रन्दन उनसे कहीं अधिक द्रावक होता है। वह जनसाधारण से कहीं अधिक हँसता है, कही अधिक रोता है और कही अधिक महसूस करता है। नन्ही-नन्ही दूब पर वर्षा की हल्की-हल्की थपकी, मलयानिल के परस मात्र से पौधों का उन्मद-नर्तन और वेगवती सरिता मे अपनी ही छाया को चूमने के लिए वृक्षों की व्यग्रता हमारे लिए कोई विशेष अर्थ नही रखती, पर कवि के लिए रखती है, प्रकृति के इन मनोमुग्धकारी दृश्यों को देख कर उनका वर्णन करने के लिये हम उतने मुखर, उतने आतुर नहीं हो जाते जितना कवि।

प्राची की पलकों मे जागा
सुन्दर सुखद विहान।
सहसा गूँज उठे नीडों मे
मीठे मादक गान।
तम भागा, आभा इठलाई,
वन की कली कली मुस्काई,
प्रकृति-परी ने ली अँगडाई,

तुहिन कणों ने फूलों के सुख
कर डाले अम्लान!

नव-प्रभात को उदय होते सब देखते हैं पर कवि की भाँति सब उसके वर्णन में इस तरह मुखर नहीं हो उठते।

निर्जन है, नि:स्वन है उपवन,
आज कहा ऋतुराज?
छाया है अवसाद विश्व का,
बन कर पतझड़ आज!
निश्वासें हैं और समीरण!
आज कहाँ भ्रमरों का गुंजन!
धूल हुआ कलियों का यौवन!
लतिकाओं को भी लगती है,
लहराने में लाज!

दुख को भी इस व्यग्रता से कवि ही प्रकट करता है। हमें तो यदि ये सब सुख और दुख के दृश्य प्रभावित भी करते हैं तो क्षण भर के लिए। निमिष मात्र को हमारा हृदय किसी अनिर्वचनीय भाव से सिहर उठता है। पर दूसरे क्षण वह फिर शान्त हो जाता है। जीवन का संघर्ष, उससे जनित कोलाहल, कभी सस्ताने का अवसर न देने वाली थकान और फिर हमारे मस्तिष्क का अपना प्रमाद हमारे इस क्षणिक उल्लास तथा विषाद को स्थायी नहीं रहने देते।

कवि की अनन्त उत्सुकता

एक तरह से कवि का मन एक शिशु का मन है, नन्हें बच्चे की समस्त उत्सुकता पूर्णरूप से उस मे विद्यमान है। बच्चे ही की भाँति प्रकृति के अद्भुत दृश्यों को देख कर वह आश्चर्यान्वित रह जाता है और उस की आँखे सुख या दुख से भरी 'विस्मित' रह जाती हैं। बच्चे की भाँति ही कवि घंटों तट से टकराती हुई सागर की लहरों को अथवा धीरे धीरे उठ कर समस्त आकाश को अपने आलिङ्गण मे बद्ध कर लेने वाले इन्द्र धनुष को तन्मय भाव से देख सकता है। जैसे प्रत्येक दृश्य को देख कर अत्यन्त सरलता से शिशु पूछता है—यह क्या है? यह क्यों है? वैसे ही कवि प्रश्न करता है, जिज्ञासा और आश्चर्य से भरा वह सदैव पूछता रहता है—यह क्या है, यह क्यों है?

> कहो लिए जाते हो नाविक,
> नौका को किस पार?

संक्षिप्त मे उस की समस्त जिज्ञासा को मूर्त कर देता है—किस पार—जीवन नौका, भव सागर, लेकिन किस पार?

इस जिज्ञासा ही मे हम इस प्रश्न का उत्तर पा जाते हैं कि काव्य का कार्य्य (Function) क्या है? जब कवि कोई प्रश्न करता है तो वह उस का उत्तर भी दे देता है। प्रश्न है—

> पाया क्या कलिका ने खिल कर?
> यौवन के झोंकों से हिल कर?
> शलभों ने दीपक से मिल कर?

उत्तर है।

एक घडी लग गले प्रिया के
मसला जाए हार!

विज्ञान की दृष्टि से यह उत्तर कितना भी गलत क्यों न हो, इस बात की परवाह नहीं—कवि से हम खरेपन का तगादा तो कर सकते है, सत्य का नही। और शायद कवि का सत्य ऐसा सत्य है, जो विज्ञान के माप-तौल पर पूरा न उतरने पर भी सत्य ही है। यही सत्य अथवा यथार्थ जो समस्त वस्तुओं का सार "the Essense of things" है, कवि का ध्येय है। एक सुन्दर कविता को पढ़ते हुए हम ऐसा अनुभव करते हैं जैसे कि हम जीवन के वास्तविक उद्देश्य के निकट पहुँच रहे हों जैसे अपने मनोरहस्यों को हम अपने सामने खुला पा रहे हों और पूर्ण जीवन का आनन्द प्राप्त कर रहे हों।

कवि की तन्मयता

प्रकृति के दृश्यों को देख कर शिशु की भाँति कवि मात्र-आश्चर्यान्वित ही नही रह जाता, उस की भाँति वह उस के रहस्यों को समझने की कोशिश ही नही करता, वरन् समझ कर वह उन मे तन्मय हो जाना, उन का प्रतिविम्ब अपने अन्तर मे पाना भी जानता है। प्रकृति के दुख सुख से वह दुखी अथवा सुखी होना जानता है—और यही शिशु मे और उस मे अन्तर है। आकाश

की बुलन्दियों में उड़ते हुए गायक पत्ती को देखकर वह (कवि) शैले (Shalley) मे कह उठाता है।

O ethereal minster, pilgrim of the sky.

A bird thou never wert. *

वर्डज वर्थ (Words worth) मे वह अनुभव करता है।

The meanest flower that blows can give thoughts that do often lie too deep for tears. †

और एक विस्तृत मरुस्थल को देख कर 'अश्क' मे वही कवि कहता है।

अपने उर मे पाता हूँ मै
तेरे उर का भास !

जीवन में काव्य का स्थान

जब तक हम कला का, या काव्य का—क्योंकि यहाँ काव्य की बात चल रही है—गहरा अध्ययन नही करते हम समझ ही नहीं सकते कि हमारे जीवन मे उस का क्या स्थान है और उस की

---

* Sky lark से—ओ स्वर्ग के गायक, ओ आकाशगामी मात्र पत्ती तुम नहीं हो सकते।

† साधारण से साधारण खिला हुआ फूल भी प्रायः मन मे ऐसे भावों का उद्रेक कर देता है जो आँसुओं से कहीं गहरे होते है अर्थात् आँसू भी जिन्हें अभिव्यक्त नही कर सकते !

सहायता के बिना हमारा जीवन कितना अपूर्ण, कितना परिमित है। यही कारण है कि—कला कला के लिये है—इस मत का मै कभी समर्थन नही कर सका। इस से अधिक अस्पष्ट वाक्य मेरे देखने मे नही आया। यदि कहा जाए—कवि इस लिये काव्य का सृजन करता है क्योंकि वह ऐसा करने के लिये वाधित है, विवश है—तो यह वक्तव्य कुछ अंशों मे सत्य भी हो सकता है। पर वास्तव मे कवि न केवल लिखता है, वरन् जो वह लिखता है, उसे पाठकों के सामने रखता भी है। यदि वह मात्र कला के लिये, मात्र अपने सुख के लिये कविता करता तो वह अपनी उन 'कृतियों' को अपनी मेज की दराज मे, या अपने सिरहाने के नीचे रखे रहता पर जब वह अपनी रचनाओं को अपने कुटुम्ब के लोगों पर, अपने मित्रों पर, जनसाधारण पर लादता है तो यह स्वतः सिद्ध है कि वह मात्र कला के लिये अथवा अपने मन को प्रसन्न करने के लिये काव्य का सृजन नही करता। कुछ कवि अपनी प्रतिभा को पैसा कमाने के लिये काम मे लाते हैं—यहां मै उन की बात नही करता। मै यहाँ उन की ही बात करूँगा जो फ़रमायिश पर नहीं, पैसों के लिये नहीं वरन् अन्तर-प्रेरणा से प्रेरित हो कर कविता करते हैं। जो अपने आप को साहित्य का स्तम्भ मानते हैं। उन के हृदय मे भी अपने उद्गारों को, अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की उत्कट अभिलाषा के साथ साथ यह प्रतीति भी किसी अज्ञात स्तर के नीचे छिपी होती है कि वे मानव-जाति के

लिए कोई सन्देश रखते हैं। काव्य जीवन ही की अभिव्यक्ति है और कवि महसूस करते है कि वे मनुष्य-मात्र के चारण हैं, वे मानुष्य-मात्र के उपकारक हैं क्योंकि वे लोगों के जीवन को और भी पूर्ण बनाते हैं, वे उनके पथ-प्रदर्शक हैं, व्यवस्थापिक हैं, क्याकि वे हमे उच्च तक पहुँचने का मार्ग दिखाते हैं और वह अन्तर्दृष्टि प्रदान करते है जिसके लिए वे इतने लालायित रहते हैं।—क्या इसका कोई महत्व नही कि प्रातःकाल खग-गणों का मधुर सङ्गीत हमारी नस नस मे एक नवजीवन का संचार कर देता है, क्या इसका कोई महत्व नही कि नव-ऋतु मे पुष्प की हल्की सी सुगन्धि हमारी कल्पना के सम्मुख रूमान (Romance) और रङ्गीनी की एक नयी दुनिया बसा देती है, क्या इसका कोई महत्व नहीं कि अस्त होते हुए अंशुमाली की सुनहरी किरणे, हमारे अन्तर मे एक विचित्र आनन्द की, एक अजीब तन्मयता की भावनाओं को जगा देती हैं—यदि इन सबका कुछ महत्व है और काव्य द्वारा वह सब सम्भव है तो क्या काव्य से हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य सिद्ध नहीं हो जाता—यह कला मात्र कला के लिए नही है, वरन् मानव-जाति के लिए है।

इस तरह कला हमारे जीवन मे उस नवीन आशा का सञ्चार कर देती है जो हमारे जीवन के कठिन भार को कुछ हल्का करने मे सहायी बनती है। सारा दिन क्लर्क अपने दफ़्तर मे बैठा बडी बडी फाइलों पर झुका रहता है, प्रात. से सायंकाल तक अभी

सड़क पर पत्थर कूटता रहता है, राजनीतिज्ञ प्रति दिन, [illegible] घण्टे गला फाड़ फाड कर चिल्लाता है—वे सब इसी लिये इतना परिश्रम करना स्वीकार करते हैं क्योंकि इसमे उन्हे धन पाने की आशा है, और धन से अपने भौतिक सुखों को प्राप्त कर लेने का उन्हे पूर्ण विश्वास है। पर भौतिक सुख अपने मे ध्येय तो नही। इन भौतिक सुखों को ही जो अपना चरम-उद्देश्य समझ लेते है, उन जैसा दीन दुखी जीव इस संसार मे दूसरा नहीं। वे सब उस व्यक्ति की भाँति हैं, जो सोने की राशि पर तो बैठा हो, पर जिस के पास खाने के लिये एक दाना भी न हो। भौतिक सुख मानसिक तृप्ति के लिये साधन मात्र हैं, बस यही काव्य हमारे जीवन मे आता है।—थके हुओं को वह आराम पहुँचाता है, दुखियों को सान्त्वना देता है और पीड़ितों को शान्ति प्रदान करता है। दिन भर किसी कारखाने मे काम करके थका हुआ पञ्जाब का श्रमी अपने साथियों मे बैठ कर 'माहिया' अलाप कर, थका हुआ पूरबिया ढोलक पर नाच कर और श्रांत किसान चांदनी रात मे घने पेड़ की छिदरी छाया मे "हीर-रांझा" की अमर कहानी सुन कर अपना मन बहला लेता है। इन निर्धन गँवार देहातियों की अपेक्षा जो अधिक सम्पन्न तथा सुसंस्कृत है वे काव्य-सुधा का पान करते है, कहानी अथवा नाटक पढ़ते है अथवा किसी अन्य ललित-कला का आश्रय लेते हैं।

कला चिन्तन है पलायन नहीं !

यह सब कुछ मानव इस लिए नही करता, क्योंकि वह इस कटु जीवन से दूर भागना चाहता है। यह विचार सर्वथा भ्रामाश्रित है। यदि उसका उद्देश्य मात्र आत्म-विस्मृति ही हो तो वह आसानी से मद्य का आश्रय ले सकता है। कला उसके लिये कटु से पलायन का साधन नही बनती बल्कि उसका मनन करने मे सहायी होती है। वह उसे अपने आपको, अपने मनो-भावों को समझने मे सहायता देती है। ऐसे आलोचकों की अब भी कमी नही जो विरक्ति को ही आत्म-दर्शन का एक मात्र साधन बताते है। उन का यह नुसखा ठीक हो सकता है—हमारे योगी सहस्रों वर्ष से इस का प्रयोग करते आ रहे है पर सब के लिये तो यह सुगम नही और शायद सब से उत्तम भी यह नही। विरक्त होकर, अपनी अलग दुनिया बसाने के लिए हम संसार मे नहीं भेजे गये। यदि हम किसी महत् की भावना मे अपने आपको विस्मृत कर देना चाहते है, यदि हम किसी पवित्र को अपने जीवन का अङ्ग बना लेना चाहते है, यदि हम किसी सूक्ष्म के अनुसन्धान मे निमग्न होना चाहते हैं, तो हमे जीवन का—जैसाकि यह है—गहरा अध्ययन करना होगा हमे मानव-उदधि की तह को, तटस्थ होकर नही बल्कि उसमे पैठकर, उसकी हलचलों से मिल कर, उसकी लहरों के थपेड़े खाकर ही जानना होगा। संक्षिप्त मे जीवन जीवन के मनन ही से पूर्ण होता है, विरक्ति से नही और कला चिन्तन है पलायन नही।

काव्य—ऊंचा उठाने वाली शक्ति !

काव्य किसी भी अन्य ललित कला की भांति हमे ऊपर उठाता है—इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि यह हमे पहले से अधिक सदाचारी बनाता है। सदाचार की ओर से काव्य उदासीन है। जैसा कि ओस्कार वाइल्ड (Oscar wilde) ने कहा—'कोई पुस्तक नैतिक अथवा अनैतिक नहीं होती, पुस्तकें या सफल होती है, या असफल !' बस यही खत्म है। नैतिक अनैतिक का झगड़ा वहां नही। असफलतापूर्वक लिखी पुस्तक धीरे धीरे अपना स्थान कबाडियों की दुकान पर जा पाती है, अथवा उसके पृष्ठों से पंसारी की पुड़िया बॅधती है। सफल, मानव जाति की धरोहर, उसका पैत्रिक-धन बन जाती है और मानव-समाज के सुख दुख मे सहायी बनती है। और कवि कीटस (Keats) के शब्दों मे 'चिर सुंदर' हो कर, 'चिर सुख' की वस्तु बन जाता है।

पर शाब्दिक अर्थों मे काव्य यद्यपि हमे नैतिक रूप से ऊपर नहीं उठाता, किन्तु वह हमे पहले से अधिक मनुष्य अवश्य बना देता है। धार्मिक वाद-विवाद से हम ऊब जाते हैं, और उपदेशों से हमारे अहंभाव को धक्का लगता है पर कविता न उपदेशक है और न सच्चरित्रता की पथ-प्रदर्शक, यही कारण है कि हम इसे पसन्द करते है। जैसाकि ड्रायडन (Dryden)* ने कहा—

* १६वी शताब्दी के अन्त का एक प्रसिद्ध उपन्यासकार

यदि काव्य हमे कोई शिक्षा भी देता है, तो यह शिक्षा हमे वह आनन्द प्रदान करने के साथ साथ देता है। काव्य इस लिये अमूल्य है क्योंकि वह हमारे मस्तिष्क को नही वरन् हृदय को अपील करता है। वह हमे महसूस करने की शक्ति प्रदान करता है और इस तरह काल्पनिक-सहानुभूति (imaginative sympathy) के द्वारा हमारी मानवता को गहरा और व्यापक बनाने मे सहायी होता है। काव्य जीवन का दर्शन है, और जब भी हम काव्य का यह महत्व समझ लेगे हम युलिसिज (Ulysses)* के साथ कह उठेगे।

"
I will drink
Life to the lees All time I have enjoyed
Greatly, have suffered greatly, both with those
That loved me, and alone . †

---

* टैनीसन की प्रसिद्ध कविता।

† तिल छट तक जीवन का प्याला मै पी जाऊँगा
खूब सुख पाया मैने और खूब ही दुख भी।
उन के साथ जो मुझ से प्रेम करते थे और उन के साथ भी और जो मुझे उपेक्षा से देखते थे।"

(ख) अश्क की कविता

कुछ भी हो इसमे सन्देह नही कि सुख का 'अश्क' ने खूब उपभोग किया है और दुख भी उसने खूब ही पाया है और यह पुस्तक उसका फल है। इसमे उसके हृदय की एक विशेप मानसिक दशा का प्रतिबिम्ब है और इसके द्वारा काल्पनिक सहानुभूति (Imaginative sympathy) से हमे एक भावुक हृदय के उन मनोवेगों को समझने मे सहायता मिलती है जो उस समय उठते हैं जब कि उसकी प्रियतम वस्तु उस से छीन ली गई हो। वह विशेष घटना जिसने 'अश्क' के समस्त जीवन के रुख को पलट दिया १९३६ के अन्त मे उसकी पत्नी का देहान्त है। अपनी पत्नी से 'अश्क' एक प्रेमी के समस्त उन्माद और एक कवि के सारे आदर्शवाद के साथ मुहब्बत करता था। १९३५ से पहले की लिखी हुई उसकी कहानियां जिसने पढ़ी हैं वे जानते हैं कि वे रङ्गीन भाषा मे मुहब्बत और प्यार के एक सुन्दर संसार की कहानी कहती हैं। तब 'अश्क' का जीवन उसकी पत्नी के अनुराग और भक्ति से ओत-प्रोत था। १९३५ के आरम्भ मे उसकी सहधर्मिणी बीमार होगई और तभी 'अश्क' के क्षणिक सुख पर विषाद के गहरे बादल उमड आए। दिन रात 'अश्क' ने उसकी तीमारदारी की, पर इस समस्त सेवा शुश्रूषा से उस गरीब को कुछ भी लाभ न हुआ और कोई डेढ वर्ष तक कवि को आशा निराशा के भँवर मे डूबता-तरता रखने के बाद १९३६ के अन्त मे

उसे दुख के सागर में डुबा कर वह सदैव के लिए चली गई। कुछ देर के लिए ऐसा महसूस हुआ कि 'अश्क' अब उबर न सकेगा, जैसे उसका दुःख सान्त्वना से परे है, पर तब अचानक अन्तर ही से उसे सान्त्वना मिली और दुख के निकलने के लिए एक मार्ग भी मिल गया। अपनी पत्नी के जीवनकाल मे 'अश्क' को कविताएं लिखने का शौक था, उसके निधन ने उसे कवि बना दिया।

व्यक्तिगत जीवन की झलक

काव्य जैसा कि मैंने पहले कहा—जीवन की अभिव्यक्ति मात्र है और 'अश्क' की कविताएं जीवन के उस प्रतिविम्ब से वञ्चित नही। दुख का बाहुल्य होने पर भी 'अश्क' की कविताओं मे स्थान-स्थान पर उसके सुखी जीवन की झलक मिलती है। 'विदा' मे वह कहता है—

'सुख था सीमा को जा पहुँचा
था आनन्द महान'

'सूनी घडियों' मे सरिता उसी सुखी संसार की ओर इशारा करती हुई कहती है—

किसने उनका विस्मृतिमय जग
कर डाला बर्बाद ?

'तस्वीर' मे वह अपनी दिवंगता पत्नी को उन्ही बीते दिनों की याद दिलाता हुआ कहता है—

याद करो तज कर दुख सारे,
जब जाते थे नदी किनारे,
सिर पर हँसते चाँद सितारे,
पैरों में कल कल गाता
सरिता का उज्ज्वल नीर !

इसी सुख के अचानक छिन जाने से वह सहसा इतना व्यग्र हो उठता है—इतना व्यग्र कि मौत स्वयं उसे प्रिय लगने लगती है। कई कविताओं मे स्पष्ट शब्दों मे उसकी ओर से मृत्यु का आह्वान किया गया है।

अगर डूब जाना सागर का
पा जाना है पार !
तो फिर व्यर्थ प्रतीक्षा किसकी
कैसा सोच विचार ?

और 'अन्तिम अतिथि' तो दूसरा कोई नही स्वयं मौत है। और उसका आवाहन वह किस शिद्दत से करता है, देखिए—

आज तोड़ दे इस वीणा के,
जीर्ण-शीर्ण सब तार
गला घोंट दे, सिसक रही है,
क्यों इसकी झंकार ?

कभी कभी वह महसूस करता है जैसे उस के सपने बिखर गए हैं, उस की प्रेयसी के साथ ही उस के यौवन का पागलपन

खत्म हो गया है—वह एक दम बूढ़ा हो गया है और जब घनघोर घटाओं के रूप मे पश्चिम के अम्बर से जीवन आता है और उस के सपने जाग उठते हैं। तो एक तीव्र व्यङ्ग से वह कह उठता है—

जीर्ण-शीर्ण तन मे यौवन की,
स्मृति का क्षणिक उभार !

प्रकृति के दृश्यों मे भी उसे अपने ही मन का प्रतीक दिखाई देता हैं। मरूस्थल से वह कहता है—

तेरा व्यापक सूनापन,
करता है मुझ मे वास !

और पतझड़ के सूने उपवन मे जाकर—

अब तो मेरे भी प्राणों पर,
है पतझड़ का राज !

पर न तो मौत बुलाए आती है और न गया हुआ ही वापस आता है। वह स्वयं इस बात से अनभिज्ञ नही, पर रोता वह इस लिए है क्योंकि रोने को वह विवश है—कितनी साफ दिली से उस ने कह दिया है।

नहीं देवता लेकिन मै तो
हूँ निर्बल इन्सान !

और चूंकि वह निर्बल इन्सान है, इसी लिये समय उस के घाव पर धीरे धीरे अज्ञात रूप से फाहा रखता जाता है और उन विपत्तियों मे भी—जहा 'आँधी है', 'बिजली है', 'बादल है',

हँस लेता हूँ यह भी सच है
पर अदम्य अवसाद
हो उठता है झूठे संयम से
सहसा आजाद!

किस ने अपने जीवन मे इस चिर-सत्य को नहीं पाया; किस का दुख उस के झूठे संयम के बांध को तोड़ कर नही बह निकला; जीवन की 'सूनी घडियों' मे किस के मन को उस के प्रिय की याद ने पागल नहीं बनाया, वसन्त और वर्षा ने किस के 'चिर सोये सपने' नहीं जगाए, प्रिय की 'तस्वीर' देख कर किस के सामने बीते हुए सुख के दिन नहीं घूम गए और विपत्तियों के अथाह सागर से घिर कर, विकल हो कर, कौन अदृश्य नाविक से नहीं पूछ बैठा—

बतलाओ भी इस यात्रा का
कहाँ अन्त क्या सार?

'अश्क' की कविताओं मे एक व्यापक अपील है और जहा वह हमे अपने साथ दुख की तलैटी मे ले जाता है, वहा वह हमारे मन को सान्त्वना देने के साधन भी जुटा देता है। अनुभूतिया उसकी बहुत गहरी हैं और दुख का दार्शनिक पहलू लेना भी उस ने खूब सीख लिया है। चरम-सुख का अन्त चरम-दुख है, इसी लिये वह कहता है—

भरा लबालब इसी लिये तो
छलक पड़ा है जाम !

और उसका यही वाक्य समस्त मानव-जाति के घावों पर ठंडा फाहा नहीं रख देता क्या ?

'अश्क' की भाषा और शैली

'अश्क' के विचार अस्पष्ट नहीं और उनको व्यक्त करने के लिए उस ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह भी अत्यन्त सरल और बोधगम्य है। व्यर्थ का शब्दाडम्बर आप को उस के यहा न मिलेगा और दुरूहता तथा क्लिष्टता भी उस मे नाम को नहीं। भाषा के सरल होते हुए भी भावों की उत्कृष्टता कम नहीं होने पाई और विषय की गम्भीरता जिस संयम की अपेक्षा रखती थी वह भी पर्य्याप्त मात्रा मे वहा मौजूद है। हो सकता है उस के यहा आप को स्विनबर्न (Swinburn) का मादक सङ्गीत न मिले, हो सकता है टैनीसन (Tennyson)के परिमार्जन का भी वहा अभाव हो पर शैले (Shalley) की तीव्र अनुभूति आप को उस के यहा मिलेगी और उन भावों की अभिव्यक्ति मे वह सरलता और बोधगम्यता, जो अंग्रेजी कवियों मे ब्लेक (Blake) और बर्न्ज़ (Burns) की विशेषता है।

प्रथमतः उर्दू-कवि होने से 'अश्क' की कविता मे यत्र-तत्र उर्दू के शब्द आ गए है पर इन से प्रवाह मे रुकावट पैदा नही हुई

बल्कि कुछ सहायता ही मिली है। पाठक उनके साथ बस बहता हुआ चला जाता है।

आ जाती है याद जवानी,
जीवन का आह्लाद जवानी,
मेरी वह बर्बाद जवानी,

या फिर

लहरें हैं मानों दीवारें,
या सर्पों की हैं फुंकारें,
या मेरे जीवन की हारें,

एक के बाद दूसरी पंक्ति ऐसे आती है जैसे जंजीर की कड़ियां या सरिता की लहरें। इस बात को 'अश्क' ने जान लिया है, जो मेरे विचार मे अधिकांश हिन्दी कवि भुलाए हुए हैं—कि "Simplicity of expression is the most potent vehicle of thought provoking ideas and sincere expression" अर्थात विचारोत्पादक भावों और खरी अभिव्यक्ति का सब से प्रभावशाली साधन शैली की सरलता और बोधगम्यता ही है।

इतना क्या कम था तुम आईं।

ये सरल शब्द जिस व्यथा को व्यक्त करते है और इन मे जो अर्थ भरे पड़े है वे इनसे और अच्छी तरह व्यक्त नही हो सकते। और न ही—

जडता गति होकर बह निकली।

मे व्यक्त भाव और अधिक स्पष्टता से व्यक्त हो सकता है।

सांकेतकता

सब कला सांकेतक है। प्राय: एक अव्यक्त भाव अत्यन्त सुन्दर और लालित्यमयी भाषा से व्यक्त किए गए बीसियों भावों से अधिक प्रभावोत्पादक होता है। मात्र एक संकेत, मात्र एक इशारा प्राय: लम्बे लम्बे वर्णनों से कही अधिक अर्थ रखता है। प्रतीत होता है 'अश्क' ने इस बात को भली भाँति समझ लिया है। अलङ्कारों का वह प्रयोग करता है—और कई स्थानों पर वह बहुत सुन्दर बन पड़े हैं—पर ऐसा करने मे वह संयम को हाथ से नहीं देता। पाठक की कल्पना के लिए वह छोड़ देता है कि शेष चित्र को पूरा करे।

मैने उस सरिता को रोते
देखा है दिन रात!
चट्टानों से सतत पूछते—

क्या पूछते ?—क्या बात है जो सरिता जानना चाहती है ?

और फिर—

कहां गए वे दो दीवाने,
पागल सौदाई मस्ताने,
दो दीपक, वे दो परवाने,

पर उन दो पागलों का क्या बना, उनका वह विस्मृतिमय संसार किसने बर्बाद कर दिया ?

और फिर—

मैने सपने जोड़ बनाए
थे कितने प्रासाद
झंझा का झोंका जो आया—

किस झंझा का ? पाठक स्वयं ढूँढ़ ले ।

अलंकारिकता

उपमाओं और रूपकों का प्रयोग करने में भी 'अश्क' निपुण है। उसकी उपमाएं सरल पर आकर्षक हैं। अपनी मौलिकता की छाप वे पाठक के मन पर छोड़ जाती हैं। अपनी प्रेयसी का ज़िक्र करते हुए, जिसे वह प्यार करता है और जो अब उसके पास नहीं वह कहता है—

स्पन्दन हो यदि तुम जीवन का,
मै हूँ जीर्ण शरीर!

और उसके बिना अपनी दशा का उल्लेख इन शब्दों मे करता है।

मै हूँ बुझते दिल की धड़कन,
तुम हो उसकी आस!

कवि की कल्पना की उड़ान इतनी ऊँची है और वह कभी कभी उपमाओं और रूपकों का इतना सुन्दर प्रयोग करता है कि वार बार उद्धरण देने को जी चाहता है।

तुम हो दीपक मैं परवाना,
मैं हूँ तन्मयता, तुम गाना,
तुम पागलपन मैं दीवाना,

और फिर 'किस पार' तो आरम्भ से लेकर अन्त तक एक रूपक ही है और 'अश्क' ने जिस सुन्दरता से अन्त तक इसे निभाया है वह सराहनीय है और खूबी तो यह है कि कहीं भी उसने अस्पष्टता नहीं आने दी।

जीवन के गहरे तत्वों को व्यक्त करने के लिये उस ने सीधी और सरल भाषा मे सुन्दर रूपक बाँधे हैं। जब अपनी असफलताओं की थकावट से चूर और निराश हो उसका मन एक कोने मे पड़ जाता है तो वह उसे कर्म मे फिर रत करने के लिये इस संसार को मदिरालय बता कर समझता है।

खाली भरे, भरे रीते हैं!

अर्थात् जो अपनी आशाओं के प्यालों को निराश हो रीता कर चुके हैं वे सुबह होते ही फिर भर लेते हैं तू भी उठ और आशा का प्याला भर ले!

क्योंकि

जीने वाले तो पीते हैं!

बस यही दुनियां के लोगों का कायदा है।

भर भर पीते हैं जीते है!

अन्तिम शब्द

एक त्रुटी 'अश्क' की कविताओं मे आपको मिलेगी। और वह यह कि उस का विषाद प्रायः कोरी भावुकता के स्तर पर उतर आता है। लेकिन इस बात से कोई इन्कार न करेगा कि अपने भावों को उसने दयानतदारी के साथ व्यक्त कर दिया है और जो भी उसने लिखा है अनुभव करके लिखा है—

'प्रात-प्रदीप' का आधारभूत विचार उर्दू का है। उर्दू का 'चिरागे़-सहरी' ही 'अश्क' के यहां 'प्रात-प्रदीप' बन गया है। यह

नाम अत्यंत सांकेतक है और पुस्तक की पहली ही कविता, जिस से यह नाम लिया गया है सारी की सारी एक रूपक है।

'चिरागे-सहरी' उर्दू मे उस दीपक को कहते हैं, जो संध्या को किसी क़ब्र पर जला दिया जाता है और जो सारी रात

तिल तिल जला जला निज उर को

प्रातः के समय बुझ जाता है।

वह 'प्रात-प्रदीप' कौन है ? इस प्रश्न के कई उत्तर हो सकते हैं। चूंकि यह कविता 'अश्क' ने 'विदा' से पहले (जो शायद अपनी म्रियमाण पत्नी को सम्बोधित करके लिखी गई है) लिखी है। इस लिए हो सकता है कि कविता लिखते समय—रोग से पीड़ित, जर्जरित अपनी पत्नी के कङ्काल का ही चित्र उसके सामने हो। और यों भी हो सकता है कि वह निराशा की चरम-सीमा पर पहुँच कर, स्वयं ही अपने आपको 'प्रात-प्रदीप' समझ रहा हो—

पर मेरे खयाल मे तो अर्थों के विचार से कविता व्यापक है। जीवन की सब निधि लुटा कर मौत की अन्धकारमय खोह मे जाते हुए किसी भी व्यक्ति को देख कर हम कह सकते है कि—

तिल तिल जला जला निज उर को
अब है मरन समीप !

'प्रात-प्रदीप' की कविताओं मे, मै सब से अधिक किसे पसन्द करता हूँ, इस सम्बन्ध मे अपनी राय मुझे पाठकों पर नही लादनी चाहिए। कविता Statistics (साङ्ख्यिक विवरण) की भाँति

है। किसी चीज़ को प्रमाणित करने के लिए उसे किसी ओर भी ले जाया जा सकता है। प्रत्येक पाठक अपने तौर पर कवि-ताओं की व्याख्या करेगा। और यह अच्छा भी है क्योंकि काव्य हमारे जीवन का ऐसा अङ्ग है कि जब तक हम अपने जीवन के साथ उसका एकीकरण नहीं कर लेते हम उसके महत्व को नहीं समझ सकते।

अन्त मे मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि 'प्रात-प्रदीप' की कविताओं से इतना पता कम से कम चल जाता है कि 'अश्क' एक कलाकार है—एक ऊँची श्रेणी का कलाकार! और यह कवितायें बताती हैं कि उसकी कविता की इतिश्री यहीं नहीं होगई। इससे पहले की 'अश्क' की प्रतिभा उसे Adieu, mon ami! (विदा) कहे, हमे आशा करनी चाहिए कि उसकी कलम से हमे कुछ और भी कविता की पुस्तके पढने को मिलेंगी।

पैरस
२६ नवंबर १६३७

धर्मप्रकाश आनन्द

विनय

प्यासा-थका मुसाफिर
तेरे किवाड़ खटखटा रहा है।
तू उसे अपने पास बुला ले,
जहां सुराहियां वर्षों पुरानी शराब से भरी पड़ी हैं।
और जहां,
बोतलों मे ठण्ढे शरबत
पुनीत-हृदय मे उच्च विचारों की भाँति पड़े हैं।
तू उसे बुला—
और यदि अपनी बहुमूल्य शराब
और ठण्डे शरबत के दो घूँट नहीं पिला सकता,

तो—

सान्त्वना के दो शब्दों के साथ

खाली पानी पिला दे।

बटोही प्यासा न रहेगा।

नदी—जिसके पहलू में विशाल हृदय है,

उसकी प्यास बुझा देगी।

और

तेरा यह धन-वैभव मिट जायगा और

तेरी खाली झोली

बटोही की दुआ तक से वंचित

आकाश की ओर ताकती रह जायगी।

इन शब्दों के साथ मैं उन सब का हृदय से धन्यवाद करता हूँ, जिन्हों ने बटोही के साथ नदी का-सा सलूक किया है और उसे अपने दरवाज़े से धतकार नहीं दिया।

उपेन्द्र—

प्रात-प्रदीप

१९३६ से १९३७ तक की कविताएँ

लेखक

प्रात-प्रदीप

प्राची की पलकों मे जागा
सुन्दर सुखद विहान !
सहसा गूँज उठे नीडों मे
मीठे मादक गान।

तम भागा, आभा इठलाई,
वन की कली कली मुस्काई,
प्रकृति-परी ने ली अँगड़ाई,

तुहिन-कणों ने फूलों के मुख
कर डाले अम्लान।
प्राची की पलकों मे जागा
सुन्दर सुखद विहान।

मदिरालय मे चहल पहल जागी,
जागे मैख्वार।
ओंठों पर है 'जाम ! जाम'!
आँखों मे अंध खुमार।

खाली भरे, भरे रीते हैं,
जीने वाले तो पीते हैं,
भर भर पीते है, जीते हैं,

ढाल ढाल मदिरा माया की,
सब करते हैं पान!
प्राची की पलकों मे जागा,
सुन्दर सुखद विहान!

'उठो! उठो'! कहकर धीरे से,
सोई पलकें चूम।
मत्त समीरण एक नशे मे,
नाच उठा झुक, झूम।

उठी उठी वह निंदिया माती,
बल खाती, लट लट छटकाती,
पग पग पर है प्रलय जगाती,

बिछने को चरणों मे आकुल
हैं धरती के प्राण!
प्राची की पलकों मे जागा
सुन्दर सुखद बिहान!

कोयल कूक उठी आमों पर,
नाच रहे हैं मोर।
वन की मधुशालाओं को अलि,
चले मचाते शोर।

पात-पात का सिहर उठा तन,
डाल-डाल पर आया यौवन,
उत्फुल्लित है वन-वन, उपवन,

मूक मुखर, स्थिर अस्थिर, आये
निष्प्राणो मे प्राण।
प्राची की पलकों मे जागा
सुन्दर सुखद विहान।

किन्तु विजन में भग्न कब्र पर
धुँधला प्रात-प्रदीप !
तिल तिल, जला जला निज उर को
है अब मरन समीप !

स्नेह-हीन यह जिसका जीवन,
जिसके शुष्क हृदय की धड़कन,
हो जाएँगे मूक किसी क्षण,

इस विहान में देख रहा है,
अब अपना अवसान !
प्राची की पलकों में जागा,
सुन्दर सुखद विहान !

विदा

मैंने कब चाहा चिर मिलना,
कब चाहा चिर प्यार ?
चाहा कब हो कुटिया मेरी,
तेरा कारागार ?

और प्रेम का लघु सुन्दर क्षण,
कब चाहा पाए चिर-यौवन,
चाहा कब हो जाए बन्धन—

मेरे सीमा हीन प्रणय का !
सखि अन्तिम अंजाम ?
चल दोगी कुटिया सूनी कर,
इसी घड़ी, इस याम !

सुख था सीमा को आ पहुँचा,
था आनन्द महान!
रोम रोम ने जीवन पाया,
नस नस ने नव प्राण!

उन घड़ियों की याद सुखद है,
उनकी स्मृति में भी तो मद है,
सुख की भी शायद कुछ हद है,

भरा लबालब इसी लिए तो
छलक उठा है जाम!
चल दोगी कुटिया सूनी कर,
इसी घड़ी, इस याम!

सूनी घड़ियों में

जीवन की सूनी घडियों मे,
देवि तुम्हारी याद।
भरती रहती है अन्तर मे,
नया-नया नव उन्माद।

आ जाती है याद जवानी,
जीवन का आह्लाद जवानी,
मेरी वह बर्बाद जवानी—

और घटाओं-सा घिर आता,
प्राणों पर अवसाद।
जीवन की सूनी घड़ियों मे,
देवि तुम्हारी याद।

मैंने उस सरिता को रोते—
देखा है दिन रात।
चट्टानों से सतत पूछते—
हम बिछुड़ों की बात।

कहाँ गये वे वो दीवाने,
पागल, सौदाई, मस्ताने,
दो दीपक, वे दो परवाने,

किसने उनका विस्मृतिमय जग
कर डाला बर्बाद?
जीवन की सूनी घड़ियों मे
देवि तुम्हारी याद।

हँस लेता हूँ, यह भी सच है,
पर अदम्य अवसाद !
हो उठता है झूठे संयम--
से सहसा आजाद !

और उमड आता है सावन,
जीवन से हारा मेरा मन,
वह आता है आँसू बन बन,

ज्वार उठाकर मुझे बहा ले
जाता कहां विषाद ?
जीवन की सूनी घडियों में,
देवि, तुम्हारी याद !

देवि ! अश्रुओं के सागर मे,
बहता जीवन-यान ।
इसे देख कर विश्व हो रहा
है कितना हैरान ।

नहीं समझता क्यों रोता हूँ ?
क्यों अपना तन, मन खोता हूँ ?
क्यों इतना कातर होता हूँ ?

बना हुआ है जग से जाना
जब आने के बाद ।
जीवन की सूनी घड़ियों मे
देवि, तुम्हारी याद !

नहीं देवता लेकिन, मैं तो
हूँ निर्बल इन्सान!
रो पड़ता हूँ, दिल रखता हूँ,
नहीं क्रूर पाषाण!

कहो, चैन कैसे मै पाऊँ?
मैं कैसे मन को समझाऊँ?
कैसे मै आँसू न बहाऊँ?

उजड गई जब मेरी दुनिया,
होते ही आबाद!
जीवन की सूनी घड़ियों मे,
देवि, तुम्हारी याद!

स्वप्नों का जागरण

मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों
आज पड़े हैं जाग?
किसने फूँक दिये कानों मे,
भूले बिसरे राग?

किसने आग लगा दी तन मे,
राख सरीखे मेरे मन मे,
ज्वाला सुलगा दी जीवन मे,

विस्मृति मे जो दवी हुई थी,
धधकादी फिर आग?
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों
आज पड़े है जाग?

पश्चिम से जीवन आया है,
उठी घटा घनघोर!
हाथ गिरेबां को जाते है,
चरण विपिन की ओर!

मन कहता—सब बन्धन तोड़े,
मस्ती मे बस्ती को छोड़ें,
रिश्ता अलमस्ती से जोड़े,

तोड़ फोड़ दे रीतें सारी,
रस्मों को दे त्याग!
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों,
आज पड़े हैं जाग?

जी भर आज लुटा दे, इतने
दिन का संचित प्यार!
अरमानों के विहग गा उठे,
युग युग के उद्गार!

शशि की सुन्दर तरी सजा कर,
किरणों की पतवार बना कर,
अम्बर के सागर मे जा कर—

नये जगत की खोज करे हम,
इस जड़ जग को त्याग!
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों,
आज पड़े है जाग?

वर्त्तमान के पट पर आँकें,
भूला हुआ अतीत।
एक बार फिर गूँजे उर मे,
गत यौवन का गीत!

आँखों मे छा जाय खुमारी,
दुनिया वदल जाय फिर सारी,
भूल जायँ हम दुनियाँदारी,

नयी आग हो, नव-यौवन हो,
नव-मद, नव-अनुराग।
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों,
आज पड़े हैं जाग?

जीर्ण-शीर्ण तन मे यौवन की
    स्मृति का क्षणिक उभार,
जाने कैसे उठा रहा है
    पागलपन का ज्वार?

रस आया फिर हृदय विरस मे,
कोयल कूक उठी मानस मे,
आज रहे जी कैसे वस मे?

शिथिल हुआ तन, बुझ न सकी है,
    पर अन्तर की आग!
मेरे चिर-निद्रित सपने क्यों,
    आज पड़े है जाग?

समझाता हूँ....

समझाता हूँ अपने दिल को,
मॉग न पागल प्यार!
क्षणभर की विस्मृति की स्मृति मे,
रोती ओस निहार!

देख तनिक पावस रोना,
पागल करना, पागल होना,
पतझर का झर जीवन खोना,

संसृति के कण कण मे व्यापक,
पीड़ा देख अपार!
समझाता हूँ अपने दिल को,
मॉग न पागल प्यार!

क्या रक्खा है मनुहारों मे,
क्या आतुर अभिसार?
एक क्षणिक सुख, उसके पीछे,
दुख का पारावार!

पाया क्या कलिका ने खिल कर?
यौवन के झोंकों से हिल कर?
शलभों ने दीपक से मिल कर?

एक घड़ी लग गले प्रिया के,
मसला जाए हार!
समझाता हूँ अपने दिल को,
माँग न पागल प्यार!

पल ही भर की एक भूल पर ,
जीवन भर अनुताप !
एक गई बीती आशा का ,
करते रहना जाप !

नभ मे नित प्रासाद बनाना ,
दिल की दुनिया अलग बसाना ,
लोगों मे उन्मत्त कहाना ,

सदा बनाते ढाते रहना ,
आशा का संसार !
समझाता हूँ अपने दिल को ,
माँग न पागल प्यार !

लगा हुआ अनुराग राग का
है अद्भुत बाजार !
निशिदिन होता रहता जिसमे ,
दुख का ही व्यापार !

आए कई चतुर व्यापारी !
भूल गये चतुराई सारी !
मन के हाथों है लाचारी !

कर न सके दिल के सौदे मे ,
दुख को अस्वीकार !
समझाता हूँ अपने दिल को ,
माँग न पागल प्यार !

एक लालसा की प्याली पी,
मतवाला संसार!
नही जानता मधु मे कितना,
है विष का संचार!

सुख है पर दुख की छाया मे,
पीडा रमी हुई काया मे,
भूला है मानव माया मे,

प्राणों की बाजी है पागल,
कुछ तो सोच विचार!
समझाता हूँ अपने दिल को,
माँग न पागल प्यार!

प्रतीक्षा

आशा थी, आओगी मधुरे,
इस पागल के द्वार!
कर दोगी नीरस जीवन मे,
नव रस का संचार!

सुन्दर स्मिति की आभा पाकर,
दमक उठेगा सूरज नभ पर,
मुस्काएँगे अवनी अम्बर,

एक बार जब हँस दोगी तो,
हँस देगा संसार!
आशा थी आओगी मधुरे,
इस पागल के द्वार!

तुम आओगी, तभी कहूँगा,
अपने दिल की बात।
चुप चुप काट दिये कितने सखि,
पल घड़ियाँ, दिन रात?

और ओंठ ये सी रक्खे थे,
भाव, हृदय मे ही रक्खे थे,
आँसू तक भी पी रक्खे थे,

रोक लिये थे दिल मे अपने,
दिल के सब उद्‌गार।
आशा थी आओगी मधुरे,
इस पागल के द्वार!

कई बार बाते कीं मैने,
तुम से अपने आप।
और स्वप्न मे सुनी तुम्हारी,
कई बार पद-चाप।

जैसे तुम मेरे घर आओ,
मधुर स्वरों मे मुझे बुलाओ,
कर-कमलों से, देवि, जगाओ,

उठा, वही निर्जन कुटिया, मै,
शुष्क वही संसार!
आशा थी आओगी मधुरे,
इस पागल के द्वार!

कई वार इस जीर्ण कुटी को,
मैंने झाड बुहार !
किया तुम्हारे आदर के हित,
हर्षसहित तैयार !

कई बार वीणा को ले कर,
तारों मे भर स्वागत के स्वर,
गीत मिलन के गाये जी भर,

कई बार आशा के पंखों
पर मैं हुआ सवार !
आशा थी आओगी मधुरे,
इस पागल के द्वार !

आओगी मधुऋतु मे मधुरे,
मलयानिल के साथ!
और सँदेसा भेजोगी तुम,
पागल पिक के हाथ!

आईं नही सँदेसे आए,
अब तो दिल बुझता-सा जाए,
कोयल क्या विश्वास दिलाए,

पतझड़ बीता जब मुड़ मुड कर,
बीत गये युग चार!
आशा थी आओगी मधुरे,
इस पागल के द्वार!

नाविक से

कहो, लिए जाते हो नौका
ऐ नाविक! किस पार?
बतला दो इस यात्रा का है,
कहाँ अन्त, क्या सार?

इन ओझल हाथों से तेरे,
मेरे खेवट, नाविक मेरे,
नौका बहती साँझ सवेरे,

पहुँचाओगे कहाँ बता दो,
मेरे खेवनहार?
कहो, लिए जाते हो नौका,
ऐ नाविक! किस पार?

ऊषा की लाली मे जाने,
किसका था आह्वान?
प्राणों की वीणा मे किसका,
बजा मनोहर गान?

बजे न जाने किसके पायल?
तन मन हुए अचानक चंचल!
बैठ गया नौका मे पागल!

सोच कहाँ, उन्माद चला तब,
क्षीर सिन्धु का ज्वार!
कहो, लिए जाते हो नौका,
ऐ नाविक! किस पार?

पथ अज्ञात, दिशा अनजानी,
है अदृश्य पतवार।
बेसुध हूँ मैं, काट रहा हूँ,
यह तूफ़ानी धार।

लहरें हैं मानो दीवारें,
या हैं सर्पों की फुङ्कारें,
या मेरे जीवन की हारें,

बढ़ता आता है प्रतिपल वह,
तम का पारावार।
कहो, लिए जाते हो नौका,
ऐ नाविक! किस पार?

आँधी है, बिजली है, बादल,
तूफानों का जोर!
आज प्रलय टूटा सा पडता,
मचा हुआ है शोर!

सागर का उन्माद भयानक!
लहरों का आह्लाद भयानक!
मन का यह अवसाद भयानक!

इधर उधर, इस तट उस तट का,
सोच आज बेकार!
कहो, लिए जाते हो नौका,
ऐ नाविक! किस पार?

अगर डूब जाना, सागर का
पा जाना है पार।
तो फिर व्यर्थ प्रतीक्षा किसकी,
कैसा सोच विचार?

बहने दो, नौका बहने दो।
लहरों को अपनी कहने दो।
यह पतवार, इसे रहने दो।

आज डुबा दो चिर विस्मृति में,
मेरा सब संसार।
कहाँ, लिए जाते हो नौका,
ऐ नाविक! किस पार?

तस्वीर

आज हाथ लग गई अचानक,
सखि तेरी तस्वीर!
एक टीस उठती है बरबस,
अन्तस्तल को चीर!

आशाओं की दुनिया फानी,
पानी का बुलबुला जवानी,
जीवन—सपना, एक कहानी,

या है अनजाने श्वासों की,
जर्जर सी जञ्जीर!
आज हाथ लग गई अचानक,
सखि तेरी तस्वीर!

मैंने सपने जोड बनाये
थे कितने प्रासाद ?
झंझा का झोंका जो आया,
हुए सभी बर्बाद !

गिरा हाथ से मद का प्याला,
क्षण मे बनी हलाहल—हाला,
बेहोशी ने होश सम्हाला,

सहसा चौंक पडा मैं जैसे,
लगा हृदय पर तीर !
आज हाथ लग गई अचानक,
सखि तेरी तस्वीर !

प्राण ! हमें बिछुड़े तो बीते ,
नहीं अभी दिन चार !
इतने ही में भूल गईं तुम ,
मेरा पागल प्यार !

याद करो, तज कर दुख सारे ,
जब जाते थे नदी किनारे ,
सिर पर हँसते चाँद सितारे ,

पैरों में कल कल गाता ,
सरिता का उज्ज्वल नीर !
आज हाथ लग गई अचानक ,
सखि तेरी तस्वीर !

याद करो सखि, याद करो तुम,
वे घड़िया, वे याम!
जब हो बेसुध अपने जग में,
भूल जगत के काम!

धंधों से दुनिया के बेसुध,
दुनिया के बन्दों से बेसुध,
इन सारे फन्दों से बेसुध,

घूमा करते थे हम दोनों,
सुख सरिता के तीर!
आज हाथ लग गई अचानक,
सखि तेरी तस्वीर!

नहीं—नही, मत याद करो कुछ .
यह तो मेरी भूल।
मेरे उर मे जो चुभते हैं .
चुभें तुम्हे क्यों शूल।

अच्छा है यदि भूल गई हो ,
स्मृति के दु.ख से मुक्त हुई हो ,
नये जगत की पथिक नयी हो ,

इस दुनिया की याद दिला क्यो ,
करूँ तुम्हे दिलगीर।
आज हाथ लग गई अचानक ,
सखि तेरी तस्वीर।

मरुस्थल के किनारे

अपने उर मे पाता हूँ मैं,
तेरे उर का भास।
तेरा व्यापक सूनापन है,
करता मुझ मे वास।

तेरी सब आशाएं, निष्फल।
तेरी सब इच्छाएं, निष्फल।
मेरी आकांक्षाएं, निष्फल—

बुझे हुए अरमानों मे हैं,
करतीं आज निवास।
अपने उर मे पाता हूँ मैं,
तेरे उर का भास।

छिपी हुई तेरे अन्तर मे,
किस तृष्णा की आग?
अन्तर्हित मेरे अन्तर मे,
किस इच्छा की आग?

जलते रहते तेरे कण कण,
जलते रहते तेरे क्षण क्षण,
जलता रहता मेरा तन मन,

जलने ही मे पाता हूँ कुछ
जीने का आभास!
अपने उर मे पाता हूँ मै,
तेरे उर का भास!

दिया न जग ने निज वैभव मे
हम दोनों को स्थान।
उभर उभर कर बैठ गये हम
दोनों के अरमान।

तूने अपनाया यह कोना,
भार हृदय का चुप चुप ढोना,
मैंने दुख के आँसू रोना,

और न करना इस जीवन मे,
कुछ भी सुख की आस।
अपने उर मे पाता हूँ मैं,
तेरे उर का भास।

सूनी अँधियारी रातों मे,
एकाकी औ' मौन!
ठुकराया इस जग के हाथों,
रोता रहता कौन?

और नही कोई—तू पागल,
और नही कोई—मै विह्वल,
हम तुम है दोनों ही बेकल,

इसी लिये रखता हूँ तुझ से,
हमदर्दी की आस!
अपने उर मे पाता हूँ मैं,
तेरे उर का भास!

अपने सूनेपन में मुझको,
आ लिपटा ले आज !
स्नेह भरे अपने अंचल की,
छाया मे निर्व्याज !

जहाँ मुझे कोई न सताए
मुझ पर निज अँगुली न उठाए
औ' पागल कह कर न बुलाए

जी चाहे रो लूँ मैं जी भर,
या हँस लूँ सोल्लास !
अपने उर मे पाता हूँ मैं,
तेरे उर का भास !

मेरे उर में

मेरे उर मे बस जाओ तुम,
    बन कर उर की प्यास!
आँखों पर छा जाओ, जैसे
    अवनी पर आकाश!

सखि, आशा का दीप जलाकर,
बुझी हुई यह प्यास जगा कर,
मत झिझको अब आग लगाकर,

अब तो दर्द बटाओ मेरा,
    करो नहीं उपहास!
मेरे उर मे बस जाओ तुम,
    बन कर उर की प्यास!

भला न मेरे सुख-सपनों को,
होने दो साकार!
रोको नहीं अश्रुओं का पर,
पागल पारावार!

नयनों की नदियों का पानी,
बहती जिसमे व्यथा कहानी,
जिसमे दिल रोता है मानी,

ले आए करुणा को शायद,
कभी तुम्हारे पास!
मेरे उर मे बस जाओ तुम,
बन कर उर की प्यास!

स्पन्दन हो यदि तुम जीवन का ,
मै हूँ जीर्ण शरीर !
मै हूँ जो सूखी सी सरिता ,
तुम हो शीतल नीर !

बिना तुम्हारे मेरा जीवन ,
एक मरुस्थल सा है निर्जन ,
ताल हीन हो जैसे नर्तन .

मै हूँ बुझते दिल की धडकन ,
तुम हो उसकी आस !
मेरे उर मे बस जाओ तुम ,
बन कर उर की प्यास !

सिर से पैरों तक जादू तुम,
मैं मोहित अनजान!
तुम हो रूप—छली, मैं हूँ सखि,
सरल प्रेम नादान!

तुम हो दीपक, मैं परवाना,
मै हूँ तन्मयता, तुम गाना,
तुम पागलपन, मै दीवाना,

विना तुम्हारे जीवन नीरस,
सुमनहीन मधुमास!
मेरे उर मे वस जाओ तुम,
वन कर उर की प्यास!

निष्ठुर जग है आँख, अश्रु मैं,
तुम धरती हो प्राण!
ठुकराया मैं—एक कोर पर,
आ बैठा अनजान!

अपना हृदय उदार बिछा लो!
अपने मे अब मुझे मिला लो!
'मुझे' मिटा दो, 'मुझे' बना लो!

यह अभिलाष करो पूरी, या
कर दो सत्यानाश!
मेरे उर मे बस जाओ तुम,
बन कर उर की प्यास!

पतझड़

निर्जन है, निःस्वन है उपवन,
आज कहाँ ऋतुराज?
छाया है अवसाद विश्व का,
बन कर पतझड़ आज!

निश्वासें हैं और समीरण!
आज कहाँ भ्रमरों का गुञ्जन!
धूल हुआ कलियों का यौवन!

लतिकाओं को भी लगती है,
लहराने मे लाज!
निर्जन है, निःस्वन है उपवन,
आज कहाँ ऋतुराज?

पीले पत्ते काँप रहे हैं,
लेकर जर्जर प्राण!
आज कहाँ फूलों के ओठों
पर पहली मुस्कान!

वह उनकी सूरत मतवाली,
वह उनके गालों की लाली,
जिसका दीवाना था माली,

खोई खोई, डाल डाल पर,
उड़ती बुलबुल आज!
निर्जन है, निःस्वन है उपवन,
आज कहाँ ऋतुराज?

सुरभित करता कुञ्ज, मलय
मे मिल कर जहाँ पराग।
और जहाँ मद के मतवाले
गाते मधुमय राग।

दौर जहाँ मदिरा के चलते,
निशिदिन थे खुम पर खुम ढलते,
जी के सब अरमान निकलते,

आज वहाँ कुछ टूटे प्यालों
का है लगा समाज!
निर्जन है, नि.स्वन है उपवन,
आज कहाँ ऋतुराज?

सूखे विटप खड़े हैं, मानो
जीवन का उपहास !
शुष्क डालियों पर कुछ पक्षी ,
नीरव और उदास !

वे नग़मे, वे गान कहाँ अब ?
जीवन के सामान कहाँ अब ?
इन ढाँचों मे प्राण कहाँ अब ?

सहसा टूट पड़ी हो जैसे ,
नभ से दुख की गाज !
निर्जन है, निःस्वन है उपवन ,
आज कहाँ ऋतुराज !

श्रान्त पथिक—मैं आ बैठा हूँ,
लेकर अमित थकान!
तस्वीरें धुँधले अतीत की,
खिंच आईं अनजान!

जब मुकुलित, पुलकित था उपवन,
जब विकसित, सरसित था जीवन,
तुम आईं थीं जब मधुऋतु बन,

अब तो मेरे भी प्राणों पर,
है पतझड़ का राज!
निर्जन है, निःस्वन है उपवन,
आज कहाँ ऋतुराज?

अन्तिम महमान

इन मेरी अन्तिम घड़ियों के
आ अन्तिम महमान !
आ मेरी अन्तिम अभिलाषा ,
आ अन्तिम अरमान !

कई पाहुने आए इस घर ,
मैं ने उनको दिया शक्तिभर ,
लेकिन तुझ को आज अतिथिवर ,

दे डालूँगा शेष रहा जो
एक सिसकता प्राण !
इन मेरी अन्तिम घड़ियों के
आ अन्तिम महमान !

यद्यपि पास नहीं मेरे कुछ,
वैभव का सामान!
लेकिन इस पिंजर मे अब भी,
तडप रही है जान!

पा न सका हूँ जो जीवन भर,
अब वह पा लूँगा जी भर कर,
तुझ पर कर उसको न्योछावर,

इसी अन्त मे अन्तर्हित है,
एक अनन्त महान!
इन मेरी अन्तिम घडियों के,
आ अन्तिम महमान!

मेरे इस जीवन—उपवन में,
कभी न फूला फूल !
आशाओं के विटप लगाए,
लेकिन सब निर्मूल !

स्वप्न एक सूना सा जीवन,
एक मरुस्थल—नीरस, निर्जन,
क्रूर, कठिन, निष्ठुर यह बन्धन,

इस में दम घुटता जाता है,
उत्पीड़ित हैं प्राण !
इन मेरी अन्तिम घड़ियों के
आ अन्तिम महमान !

मिट जाने वाली आशाओं
का यह सुन्दर जाल,
युग युग से है बना हुआ
मेरे जी का जंजाल!

मुक्त नहीं होने पाता हूँ,
अधिक उलझता ही जाता हूँ,
रूह कहाँ, फिर भी गाता हूँ,

घुटे-घुटे स्वर मे जीवन का,
नीरस निर्मम गान!
इन मेरी अन्तिम घड़ियों के,
आ अन्तिम महमान!

आज तोड़ दे इस वीणा के ,
जीर्ण—शीर्ण सब तार !
गला घोंट दे, सिसक रही है ,
क्यों इस की झंकार ?

या गाना—सचमुच हो गाना,
ज्वाला हो, या हो बुझ जाना,
जीना हो, क्या स्वाँग रचाना,

आज बुझा दे इस दीपक को ,
जो है अब म्रियमाण !
इन मेरी अन्तिम घड़ियों के,
आ अन्तिम महमान !

आकांक्षा

मृगतृष्णा सूने उर की, ओ
मन की सुखद हिलोर!
एक वार, बस एक वार छू,
इस जीवन का छोर!

बन कर जीवन का जीवन आ!
ओ मेरी स्मृतियों के धन आ!
ओ मेरे रूठे यौवन आ!

सन्ध्या के अँधियारे मे भर
रङ्ग-बिरङ्गी भोर!
मृगतृष्णा सूने उर की, ओ
मन की सुखद हिलोर!

उस घाटी मे ले चल, जिसमे
दिन है और न रात!
कुछ क्षण हैं, जिनकी सीमाएं,
सन्ध्याएं औ' प्रात!

विस्मृति के वे क्षण फिर लादे!
तन मन की सुध-बुध विसरादे!
जीवन को फिर स्वप्न बनादे!

और मिलादे उस अम्बर से
इस धरती के छोर!
मृगतृष्णा सूने उर को, ओ
मन की सुखद हिलोर!

उस घाटी मे ले चल, जिसमें
भ्रमरों की गुञ्जार,
कली कली के कानों मे कहती
मधुऋतु का प्यार!

पच्छी गीत पुराने गाते,
भूली बिसरी तान सुनाते,
तन मन मे फिर आग लगाते,

आमों पर कोयल की कू-कू
औ' विहगों का रोर!
मृगतृष्णा सूने उर की, ओ
मन की सुखद हिलोर!

उस घाटी मे ले चल, जिसमे
है उन्मत्त बयार,
वीथि वीथि मे गाता फिरता
अपना पागल प्यार!

उसके स्वर से ताल मिला कर
उर मे जीवन की मृदुता भर
गा उठता है झर झर निर्झर

मर-मर के स्वर मे ताली देता
पत्तों का शोर!
मृगतृष्णा सूने उर की, ओ
मन की सुखद हिलोर!

ऐसे मे उस स्नेहमयी को ,
कर दे फिर छविमान !
घने बादलों मे शशि-सा मुख ,
विद्युत सी मुस्कान !

आँखों मे भर कर कुछ पानी ,
मै उससे कह लूँ—ऐ रानी !
भूल गई वह प्रेम-कहानी ?

जिसके साक्षी चाँद, सितारे ,
निर्झर, पत्ते, मोर !
मृगतृष्णा सूने उर की, ओ
मन की सुखद हिलोर !

पतित

मत ठुकरा ओ जाने वाले,
जान मुझे बेजान।
मेरी जडता मे स्पन्दित हैं,
निष्ठुर शत-शत प्राण !

इन प्राणों मे पीड़ा सोती,
एक व्यथा है चुप-चुप रोती,
निशि-दिन मूक वेदना होती,

छिपा हुआ अवसाद विश्व का,
है इनमे अनजान।
मत ठुकरा ओ जाने वाले,
जान मुझे बेजान।

एक दिवस पाता था मै भी
दुनिया को रंगीन।
और सदा रहता था अपने
सुख-सपनों मे लीन।

मेरे इन पाँवों के नीचे,
कण-कण अश्रुकणों से सींचे,
कौन पड़ा है आँखे मीचे?

कभी भूल कर भी तो इसका,
नहीं किया कुछ ध्यान!
मत ठुकरा ओ जाने वाले,
जान मुझे बेजान!

अहंकार के पंखों पर उड,
हो नभ पर आसीन!
समझ रहा था विधि को भी मै,
अपने ही आधीन!

गिरि-सा दृढ हूँ, मैने जाना,
कोई पतन भी है, कब माना,
होनहार को कब पहचाना,

आज ठोकरों मे पथिकों की,
है मेरा सम्मान!
मत ठुकरा ओ जाने वाले,
जान मुझे बेजान!

जाने क्यों है एक खुमारी,
वैभव का यह ज्ञान?
डाल दिया करता क्यों पर्दा,
आँखों पर अनजान?

नही समझता क्यों मानी मन,
चार घडी का है यह यौवन,
पत्ता है पतझड़ का जीवन,

क्या जाने कब गिर जाएगा,
लेकर सब अभिमान!
मत ठुकरा ओ जाने वाले,
जान मुझे बेजान!

एक दिवस हो जाएगा तू भी
इस पथ की धूल !
इस जाने वाले यौवन पर
ओ पागल मत भूल !

देख तनिक मुरझाई कलियाँ,
भ्रमरों की सोई रँगरलियाँ,
मूक हुई उपवन की गलियाँ,

अरे वही अभिशाप बनेगा,
जो है अब वरदान !
मत ठुकरा ओ जाने वाले,
जान मुझे बेजान !

आशा का अंचल

जीवन के सब फूल लुटा कर,
भर झोली मे शूल!
इस तूफ़ानी सागर के सखि,
मैं आ पहुँचा कूल!

झंझा के झोंके हैं जागे,
हैं उद्दाम तरंगे आगे,
साहस का भी साहस भागे,

आशाओं का हुआ जा रहा
है जैसे उन्मूल!
जीवन के सब फूल लुटा कर,
भर झोली मे शूल!

स्मृतियों के धुँधले दीपक, जो
अब तक थे द्युतिमान ,
साथ छोड कर होते जाते
वे भी अन्तर्धान !

या अब मै खुद भी बुझ जाऊँ ,
या फिर दीपक और जलाऊँ ,
जगमग जगमग जगत रचाऊँ ,

नव आशाओं के पंखों पर ,
एक बार फिर भूल !
जीवन के सब फूल लुटा कर ,
भर झोली मे शूल !

आज पहुँच मंजिल पर भी तो ,
नहीं मुझे सन्तोष !
उर मे आग लिए फिरता हूँ ,
फिर है किसका दोष !

माना इसमे आन नही वह ,
दमक उठे जो, शान नही वह ,
ज्वालाओं मे जान नही वह ,

और पड़ी अगनित हारों की ,
अंगारों पर धूल !
जीवन के सब स्वप्न लुटा कर ,
भर झोली मे शूल !

हुई नही हैं अभी उमंगे
पर मेरी निष्प्राण !
उडने को आतुर हैं अब भी ,
थके हुए अरमान !

क्यों न उठूँ, चल दूँ मै उठ कर ,
इन लहरों के आज वक्ष पर ,
आलिङ्गन मे नयी स्फूर्ति भर ,

खे कर ले जाऊँ नौका को ,
नये जगत के कूल !
जीवन के सब फूल लुटा कर ,
भर झोली मे शूल !

जाने तुम उस अभिनव जग मे ,
मिल जाओ अनजान !
पूरे हो जाएँ फिर मेरे ,
सब अपूर्ण अरमान !

जाने—आज यदपि मै असफल ,
सफल मनोरथ हो जाऊँ कल ,
क्यों छोड़ूँ आशा का अंचल ?

ये मेरे सब शूल न जाने ,
कब हो जाएँ फूल ?
जीवन के सब फूल लुटा कर ,
भर झोली मे शूल !

रोता है तू तो हँसता है संसार देखकर।
बस 'अश्क', इसके सामने रोना न चाहिए ॥

शर्मा ब्रदर्ज

श्री 'अश्क' की आगामी रचना

द र्प ण

आशा निराशा

सुख दुःख

हँसी रुदन

अर्थात्

व्यापक जीवन की एक सौ विविध झाँकियों का प्रतिबिम्ब लिये शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

आप देखेंगे—

कवि 'अश्क' इसमे एक नये रूप मे आपके सामने आता है। वह कल्पना-लोक के सुन्दर स्वर्ग बनाने वाला कवि नहीं, बल्कि इस जीवन को खुली आँखों से देखकर अपनी ही अनुभूतियों को छन्दों का रूप देने वाला कवि है।

शर्मा ब्रादर्स १८४, अनारकली, लाहौर